श्री अमर भारती

वीरायतन की मासिक पत्रिका | जून- 2023 | वर्ष-66 | अंक-06 | मूल्य: रू॰ 10/-

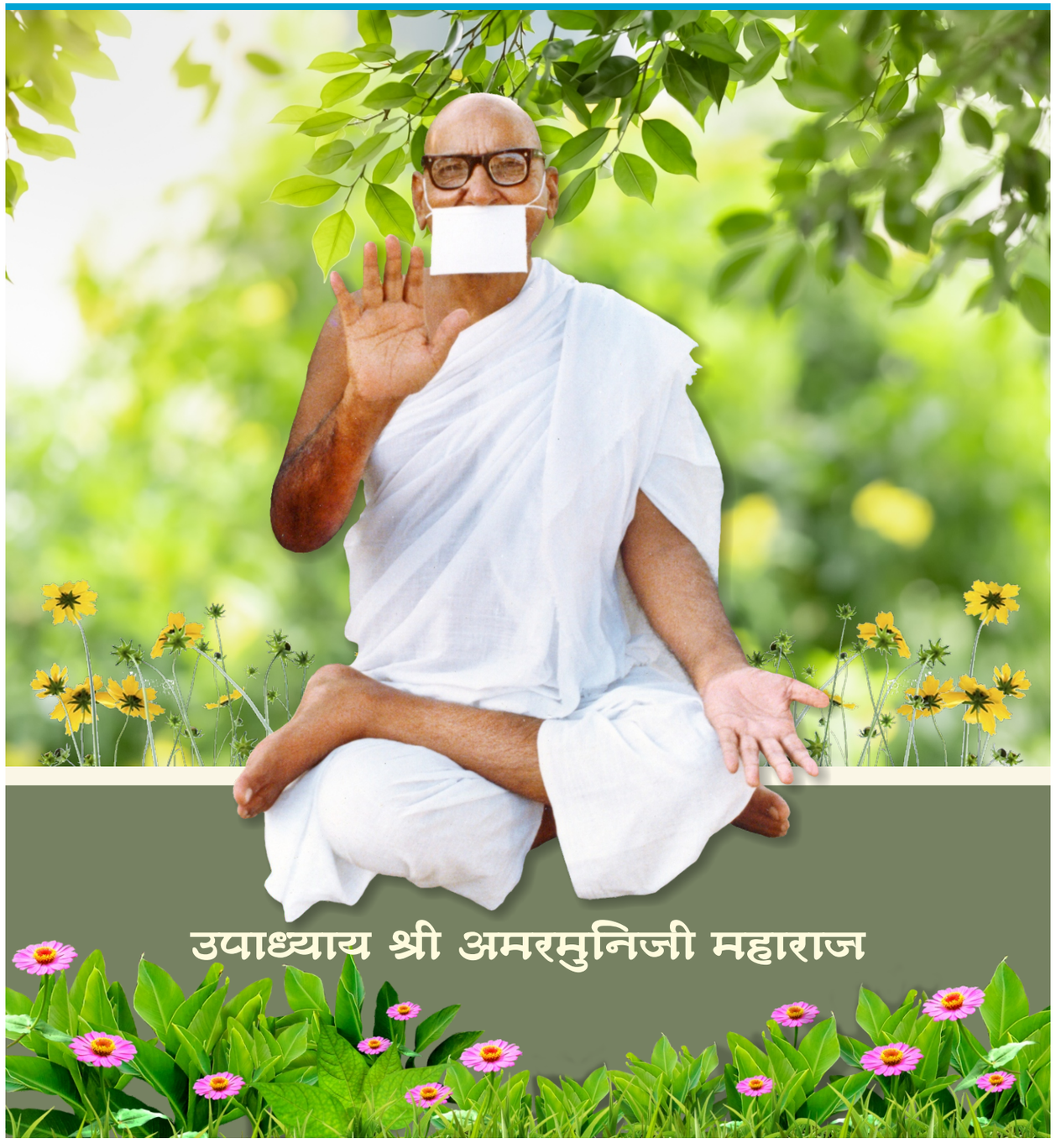

पद्मश्री पूज्य डॉ. श्री ताई माँ के आशीर्वाद एवं प्रेरणा से जैना (USA) में वीरायतन की सुंदर प्रस्तुति

श्री अमर भारती

वीरायतन की मासिक पत्रिका जून-2023 वर्ष: 66 अंक: 06

संस्थापक
उपाध्यायश्री अमरमुनि

दिशा-निर्देश
आचार्यश्री चन्दनाश्रीजी
•
सम्पादक
साध्वीश्री साधनाजी
•
महामंत्री
नवीन चंद सुचंती

उद्बोधन

पूज्य गुरुदेव के चरणों में....

तू करुणा का सागर तेरी,
करुणा जग का जीवन प्राण।
तेरी वाणी में मुखरित है,
जन-जन का शाश्वत कल्याण।।

तुझ-सा तू ही था जगती पर,
तेरा नहीं अन्य उपमान।
लोकदीप दिनकर का कैसे,
दीपक ले सकते है स्थान?

तेरे गुण की गौरव गाथा,
धरती के जन-जन गायेंगे।
और सभी कुछ भूल सकेंगे,
पर तुझे भूल ना पायेंगे।।

This issue of Shri Amar Bharti can be downloaded from our website- www.veerayatan.org

अनुक्रमणिका

पूज्य गुरुदेव के चरणों में		01
क्या गुरुदेव अलोप हो गये?		03
अरिहन्त सिद्धान्त और स्वरूप	उपाध्याय अमरमुनि	09
मेरे देवदूत- एक अनासक्त योगी	आचार्य चन्दना	10
मानव चेतना		16
स्वप्नदृष्टा पद्मश्री डॉ. आचार्य.....	स्त्री शक्ति राष्ट्रीय पुरस्कार	17
पद्मश्री डॉ. आचार्यश्री जी का उद्‌बोधन		21
भारत की विराटात्मा	उपाध्याय अमरमुनि	23
वीरायतन की लाईब्रेरी	कुमार अनिल, समाचार सम्पादक	29
नवल वीरायतन पूणे शिविर श्रृंखला		47

हंसते-हंसते विष पिऊंगा,
बदले में अमृत बाटुंगा।
धरती पर के दुःख द्वन्द्वों की,
लौह श्रृंखलाएँ काटुंगा।।

जन्मा फिर भी रहा अजन्मा,
मरकर भी मैं अजर अमर।
नश्वर अन्य अनश्वर मैं हूँ,
चर होकर भी अगम अचर।।

– उपाध्याय अमरमुनि

कैसे भुलाया जा सकता है वह एक जून 1991 की सोमवती अमावस्या का दिन जब जन-जन के श्रद्धाकेन्द्र पूज्य गुरुदेव, वे मनस्वी सन्त अपनी मेघगर्जना-सी वाणी में मंगल पाठ की पावन ध्वनि से देवतात्मा वैभारगिरि के शिखरों को गुंजाते हुए एकाएक अलोप हो गये! क्या सच है यह?

लेकिन श्रद्धाशील हृदय की ध्वनि गुंज उठती है कि नहीं, गुरुदेव अलोप नहीं हुए हैं। वे तो भक्तों के हृदय सिंहासन पर विराजमान हैं। वस्तुतः गुरुदेव उपाध्याय श्रीअमर मुनिजी महाराज एक ऐसे अद्‌भुत सन्तरत्न रहे हैं जिन्होंने दिया ही दिया है। उनकी यह अन्तर्ध्वनि थी– वे गाते थे– "मनुज हूँ मैं यहाँ, मनुजत्व का उपहार लाया हूँ।" और जीवन भर वे मानवता के उपहार को बांटते रहे। दोनों हाथों से बांटते रहे।

किशोर अवस्था में ही दीक्षित होकर उन्होंने क्रान्ति का शंखनाद किया। प्रचलित परंपरा को पारकर संस्कृत पाठशाला में जाकर विपरीत परिस्थितियों में भी संस्कृतभाषा का अध्ययन किया। साथ ही साथ जिन्हें ज्ञान के प्रति रुचि नहीं थी उन्हें ज्ञान के प्रति रुचि जगाकर पढाना शुरु किया। इस प्रकार आगे बढ़ते हुए कई उच्च कक्षा के विद्यार्थियों को दर्शन, न्याय, व्याकरण जैसे कठिन ग्रन्थों का अध्ययन कराया। कई सन्तों को शास्त्राध्ययन कराया। मानों ज्ञान सागर में वे निरन्तर डुबकियाँ लेते रहे। विद्यालयों, विश्वविद्यालयों में उनके प्रवचन होते, ज्ञानगोष्ठी, सेमिनारों में उन्हें आमन्त्रित किया जाता।

आगरा के रतनमुनि जैन गर्ल्स कॉलेज, बाईज कॉलेज, भगवती देवी जैन कॉलेज, सन्मति ज्ञानपीठ आदि शिक्षा एवं साहित्यिक संस्थानों पर उनका वरदहस्त रहा।

देश की आजादी के आन्दोलन में उनका सक्रिय योगदान रहा। आन्दोलन के प्रचार में उन्होंने अनेक काव्य लिखे। जिन्हें जुलूस में, भाषणों में सस्वर गाया जाता। तब पटियाला सरकार ने उनकी काव्य रचना की एक पुस्तिका 'कविताकुंज' जब्त कर दी थी।

महात्मा गांधी, सरदार बल्लभभाई

पटेल, जवाहर लाल नेहरू, भीमराव अम्बेडकर, विनोबा भावे समय-समय पर गुरुदेव से विचार-विमर्श किया करते थे। आजादी के बाद पाकिस्तान से आए शरणार्थियों के लिए वे शरणस्थली बने। वर्ष 1970 में दीक्षा-स्वर्ण जयन्ती समारोह में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने उन्हें श्रद्धा के साथ 'राष्ट्रसंत' की उपाधि से अलंकृत किया।

लेकिन उनका यह पद, उनकी प्रतिष्ठा और कीर्ति सदा उनकी अनुयायी बनी रही कभी सिर पर नहीं चढ़ी। उनका मानवता का कार्य निरन्तर आगे बढ़ता रहा । उनकी विहार यात्राएँ होती रही। राजस्थान की यात्रा में अनेक खटीक [कसाई] परिवारों को गुरुदेव ने अहिंसा के रंग में रंग दिया। जिससे उन परिवारों ने हिंसक व्यवसाय छोड़कर अहिंसक व्यवसाय शुरु किया। हरिजन बस्ती में जाना, उनकी सभा में, समाज में प्रवचन देना, उनकी चेतना को जगाना, उनके बच्चों के अध्ययन की व्यवस्था करना इत्यादि मानवता के कार्य उनके निरन्तर चलते रहे।

यह समाजोत्थान की करुणाधारा निरन्तर बहती रही, फिर भी साधना के क्षेत्र में तप उनके अप्रमत्त जीवन का एक महान आदर्श था। तप और ध्यान उनकी साधना का केन्द्रीभूत आधार था।

साधना के हर आयाम की समाराधना सतत होती रही। अनेक प्रकार की दीर्घकालीन तपस्याएँ तो उनके जीवन का एक सहज मार्ग था। समुद्र तट, नदी तट, पर्वत गुफाएँ उनके ध्यान के प्रिय स्थान थे। स्वाध्याय, लेखन, चिन्तन, पठन-पाठन, प्रवचन रुप ज्ञानाराधना में अप्रमत्त जीवन था उनका।

पूज्य गुरुदेव का साहित्य कालजयी है। उनकी रचनाओं ने भगवद्वाणी को नया आयाम दिया है, आध्यात्मिक चिन्तन दिया रचनात्मक कर्म की शिक्षा दी, बुद्धिजीवी एवं युवावर्ग के लिए नयी दृष्टि दी। स्त्री-शिक्षा के लिए उदात्त दृष्टिकोण दिया।

गुरुदेव ने नारी गरिमा के केवल गीत ही नहीं गाये अपितु उसके लिए रचनात्मक कदम भी उठाये। गुरुदेव ने वह कार्य किया, जो भगवान महावीर के बाद 25 शताब्दियों में नहीं हुआ। साध्वी चन्दनाश्रीजी को उनकी ज्ञान, कर्म एवं करुणा की तेजस्वी सृजनशील शक्ति तथा जन मंगल के कार्यों का सम्मान करते हुए उन्हें 'आचार्य' पद से अभिषिक्त किया। उनके क्रान्तिकारी विचारों एवं कर्मक्षेत्र वीरायतन के लिए गुरुदेव ने मुक्तमन से आशीर्वाद बरसाये। अपार है गुरु की महिमा। कौन है जो उनकी महिमा को कह सके?

गुरु की महिमा की क्या सीमा,
वह है असीम अनन्त।
कथ-कथ सभी शास्त्रगण थाके,
सद्गुरु ऐसा अकथ है सन्त॥

अरिहन्त : सिद्धान्त और स्वरुप

- उपाध्याय अमरमुनि

जैनदर्शन के अनुसार वीतरागदेव अरिहन्त होते हैं। बिना अरिहन्त हुए वीतरागता प्राप्त नहीं होतीं दोनों में कार्य-करण का अटूट सम्बन्ध है। अरिहन्तता कारण है और वीतरागता उसका कार्य हैं जैन धर्म विजय का धर्म है। शत्रुओं को जड़ मूल से नष्ट करने का धर्म है। इसी कारण सम्पूर्ण जैन साहित्य अरिहन्त के मंगलाचरण से प्रारम्भ होता है और अन्त में अरिहन्त पर पहुँचकर समाप्त होता है। जैन धर्म का मूल मन्त्र नवकारमन्त्र है। उसमें सर्वप्रथम पद है– 'नमो अरिहन्ताणं।'

जैन धर्म की साधना का मूल है- सम्यक् दर्शन। इसकी प्रतिज्ञा का सूत्र भी 'अरहन्तो महदेवो' से प्रारम्भ होता है। इन्द्रस्तव का प्रारम्भ भी "नमोत्थुणं अरिहन्ताणं" से होता है। अत: जैन धर्म को समझने के लिए अरिहन्त शब्द को समझना आवश्यक है।

अरि अर्थात् शत्रु और हन्त का अर्थ है नष्ट करना। प्रश्न हो सकता है कि क्या शत्रुओं को मारने से कोई अरिहन्त हो जाता है? शत्रुओं को नष्ट करनेवाले तो हजारों वीर सैनिक है तो क्या वे भगवान है? वे अरिहन्त है?

उत्तर में निवेदन है कि शत्रु बाहर के नहीं, किन्तु अन्तरंग क्रोध, मोह, लोभादि शत्रुओं को नष्ट करनेवाला। अन्तरंग शत्रुओं पर विजय पानेवाली विरल आत्माएँ होती हैं। बाहर के करोड़ों शत्रुओं से एक साथ युद्ध करनेवाले तो होते हैं बहुतेरे। लेकिन अपने मन की वासनाओं के आगे वे कायर हो जाते हैं, कामनाओं, वासनाओं के गुलाम बन जाते हैं। ये वासना वस्तुत: विषवृक्ष है। इसके मात्र पत्तें तोड़ने से काम नहीं चलेगा। इसे तो जड़ से उखाड़ना होगा। जब अन्तर हृदय में वासना नहीं रहेगी तो काम, क्रोध आदि की छाया ही नहीं

होगी तब कारण के बिना बाहर के शत्रु क्यों जन्म लेंगे? और तब बाहर में भी शत्रु कैसे रहेंगे?

यह धर्मयुद्ध है इसमें बाहर नहीं लड़ना है। स्वयं को स्वयं से ही लड़ना है। विश्वशान्ति का मूल इस भावना में सन्निहित है। अरिहन्त बननेवाले, अरिहन्त बनने की साधना करनेवाले स्रष्टा बन सकते हैं अन्य नहीं। ऐसे आन्तरिक शत्रुओं को मारने की भावना को लक्ष्य कर आचार्य भद्रबाहु ने कहा है– ज्ञानावरणीय आदि अष्टकर्म ही वस्तुतः संसारी जीवों के शत्रु है। महापुरुष उन शत्रुओं को नष्ट करते हैं अतः अरिहन्त कहलाते हैं।

अट्ठविहं पि य कम्मं,
अरिभूयं होइ सव्व जीवाणं।
तं कम्ममरिहन्ता,
अरिहन्ता तेण वुच्चन्ति॥

मागधी, प्राकृत, संस्कृत आदि प्राचीन भाषाओं की यह बड़ी खूबी है कि एक शब्द के भीतर रहे अनेक गंभीर भावों को प्रकट कर देती है। आचार्यों ने अरिहन्त शब्द के अनेक अर्थ सूचित किये हैं। अरिहन्त के पाठान्तर भी स्वीकार किये हैं जैसे अरहन्त अरुहन्त आदि। 'अर्ह' पूजायाम् धातु से बना अर्हन्त का अर्थ है पूज्य। अर्हन्तदेव, विश्वकल्याणकारी धर्म के प्रवर्तक है अतः सुर-असुर-नर आदि सबके पूज्य है तीर्थंकर देव। वीतराग की उपासना तीनों लोक में की जाती है इसलिए वे त्रिलोकपूज्य है। स्वर्ग के इन्द्र भी प्रभुचरणों की रज मस्तक पर चढ़ाते हैं और स्वयं को धन्य-धन्य मानते हैं।

दूसरा अर्थ अरहन्त का है– रह अर्थात् रहस्य, गुप्त। अरह का मतलब हुआ- जिनके लिए विश्व का कोई रहस्य छुपा हुआ नहीं है। अनन्तानन्त जड़-चैतन्य पदार्थ हस्तामलक की भांति स्पष्ट जाने-देखे जाते हैं, वे है अरहन्त।

एक और पाठान्तर है- अरुहन्त। अरुहन्त का अर्थ है– कर्मबीज को नष्ट करनेवाला, पुनः जन्म न लेनेवाला। रुह धातु, (शब्द) का संस्कृत में अर्थ है सन्तान, परम्परा। बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज। पुनः बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज। इस प्रकार बीज और वृक्ष की परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है। लेकिन जब बीज को जलाकर नष्ट कर देता है कोई तो फिर उस दग्धबीज से वृक्ष उत्पन्न नहीं होता। जैसे बीज-वृक्ष की परम्परा समाप्त हो जाती है। उसी प्रकार कर्म से जन्म, और जन्म से कर्म की परम्परा भी अनादिकाल से चली आ रही है। जो कोई साधक रत्नत्रय (ज्ञान दर्शन चारित्र) की साधना रुपी अग्नि से कर्म रुप बीज को पूर्णतः नष्ट कर देता है, जला देता है तो वह साधक जन्ममरण की परम्परा से मुक्त हो जाता है। अरुहन्त की इस परिभाषा को आचार्य उमास्वाति ने अपने स्वोपज्ञ भाष्य में

कहा है–

दग्धेबीजे यथात्यन्तं,
प्रादुर्भवति नांकुरः।
कर्मबीजे तथा दग्धे
न रोहति भवांकुरः॥

अरिहन्त, भगवान कहलाते हैं। भारतवर्ष के दार्शनिक और धार्मिक साहित्य में भगवान शब्द अत्यन्त उच्चकोटि का शब्द माना गया है। भगवान शब्द 'भग' शब्द से बना है अतः भगवान का अर्थ हुआ भगवद् आत्मा। आचार्य हरिभद्र ने भग शब्द के छह अर्थ बताये हैं– ऐश्वर्य=प्रताप, वीर्य=शक्ति या उत्साह, यश=कीर्ति, श्री=शोभा, धर्म=सदाचार और प्रयत्न= कर्तव्य पूर्ति के लिए किया जानेवाला अदम्य पुरुषार्थ।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य,
वीर्यस्य यशसः श्रियः।
धर्मस्याथ प्रयत्नस्य,
षण्णां भग इतींगना॥

–दशवैकालिक टीका

इससे स्पष्ट है कि महान आत्मा में पूर्ण ऐश्वर्य, पूर्ण वीर्य, पूर्ण यश, पूर्ण श्री, पूर्ण धर्म और पूर्ण प्रयत्न होता है, अतः वे भगवान कहलाते हैं। तीर्थंकर में ऊपर बताये गये छहो गुण पूर्णरुपेण विद्यमान होते हैं। इसीलिए वे भगवान है।

जैन संस्कृति, मानव संस्कृति है। वह मानव में ही भगवत् स्वरुप के दर्शन करती है। जो साधक साधना करते हुए वीतराग के पूर्ण विकसित पद पर पहुँच जाता है वह भगवान बन जाता है। जैन धर्म की वह मान्यता नहीं है कि मोक्षलोक से भटक कर ईश्वर यहाँ मनुष्य लोक में अवतार लेता है और वह भगवान बनता है। जैनधर्म के ईश्वर भटके हुए ईश्वर नहीं। परन्तु पूर्ण विकास प्राप्त करनेवाली मानव आत्मा ही परमात्मा-ईश्वर है। उसके चरणों में स्वर्ग के इन्द्र अपना मस्तक झुकाते हैं। उसे अपना आराध्य मानते हैं। तीनों लोकों का सम्पूर्ण ऐश्वर्य उन चरणों में उपस्थित रहता है। उस परमात्मा का प्रताप ऐसा प्रताप है कि जिसके सामने कोटि-कोटि सूर्यों का प्रताप और प्रकाश भी फीका है।

अरिहन्त भगवान को आदिकर भी कहा जाता है। आदिकर का अर्थ है आदिकरनेवाले। प्रश्न हो सकता है कि किसकी आदि करनेवाले? धर्म तो अनादि है उसकी आदि कैसे? उत्तर है कि धर्म अवश्य अनादि है, जब से संसार है, संसार का बन्धन है। तब से धर्म है और उसका फल मोक्ष है। जब संसार अनादि है तो मोक्ष भी अनादि हुआ। परन्तु यहाँ जो धर्म की आदि करनेवाले कहा गया है। उसका अभिप्राय है कि तीर्थंकर भगवान धर्म का निर्माण नहीं करते, किन्तु धर्म की व्यवस्था, धर्म की मर्यादा का निर्माण करते हैं। उनके युग में धर्म में जो विकार आ गया हो, धर्म के नाम पर जो मिथ्या आचार फैल गया हो, उसकी

शुद्धि करके नयी व्यवस्था की आदि करने से अरिहन्त भगवान आदिकर कहलाते हैं।

कुछ मनीषी जैनाचार्यों का कथन है कि अरिहन्त भगवान श्रुतधर्म की आदि करनेवाले होते हैं। अर्थात् श्रुतधर्म का निर्माण करनेवाले होते हैं। आचारांग आदि धर्म सूत्रों को श्रुतधर्म कहा जाता है। तीर्थंकर भगवान पुराणे धर्म शास्त्रों के अनुसार अपनी साधना का मार्ग तैयार नहीं करते। उनका जीवन अनुभव का जीवन होता है। अपने अनुभव के द्वारा ही वे अपना मार्ग बनाते हैं और उसके बाद उस मार्ग को जनता के समक्ष रखते हैं। पुरानी परम्परा को ढोना उन्हें अभीष्ट नहीं होता।

हर युग के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव अलग-अलग होते हैं। तदनुसार ही शास्त्र तथा विधि-निषेध के नियम भी होने चाहिए तभी जनता का हित हो सकता है। अन्यथा जो शास्त्र चालु युग की गुत्थियों को सुलझा न सके वे शास्त्र मानवजाति के वर्तमान युग के लिए अनुपयोगी होते है। इसीलिए तीर्थंकर भगवान पुराणे शास्त्रों के अनुसार नहीं चलते और न जनता को चलाते हैं। स्वानुभव के आधार पर नये विधि-विधान का निर्माण करके जनता का कल्याण करते हैं। अत: वे आदिकर कहलाते हैं।

एक नजर

महाराज रणजीत सिंह के पास एक खुशखतनवीस (सुलेखक) आया मेहनत से यह प्रति उसने तैयार की है।

उसका अभिप्राय जानकर गुणग्राही महाराज ने वह प्रति दोनों हाथों में लेकर श्रद्धापूर्वक अपने माथे से लगायी फिर उसकी सुन्दरता एवं सुलेख को बड़े ध्यान से देखा, उसकी प्रशंसा की और लेखक को बहुमूल्य उपहार देकर विदा किया।

महाराज की इस उदारता से मंत्री अजीजुद्दीन आश्चर्यचकित हुए और पूछा, 'महाराज! आप सिक्ख होकर हम मुसलमानों की धार्मिक पुस्तक को स्वीकार किया?'

महाराज मुस्कुराए और बोले, 'मंत्रीवर! आपने मुझे कभी न पूछा कि एक सिक्ख होकर मैंने आपको अपना मन्त्री क्यों बनाया?

अजीजुद्दीन हकलाने लगे, पानी-पानी हो गये। पंजाबकेसरी ने शांत स्वर में कहा, 'वाहे गुरु ने शायद मेरी एक आंख की रोशनी इसलिए हटा दी है ताकि मैं हर धर्म को एवं हर इन्सान को एक नजर से देख सकु। मंत्री नतमस्तक हो रहा।

'मेरे देवदूत' नामक यह पुस्तक उन श्रेष्ठतम पुस्तकों में शुमार है जो हमें अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलती है। इसका हर पेज बोधप्रद है, प्रेरणादायी है।

पद्मश्री डॉ. आचार्य चन्दनाश्रीजी पूज्य ताई मां ने इस पुस्तक में उन सभी व्यक्तियों का अहोभाव पूर्वक उल्लेख किया है जिनसे उन्हें अपने जीवन को ऊँचा उठाने में सहयोग प्राप्त हुआ है। अथवा ऐसा भी हम कह सकते हैं कि हर सामान्य से सामान्य में विशिष्ट और विशिष्टतम देखने की उनकी दृष्टि ने जिन-जिन छोटे-बड़े सभी व्यक्तियों से जो-जो वैशिष्ट्य ग्रहण किया है, उनके प्रति कृतज्ञता, ऋजुभाव और धन्यभाव दर्शाया है और उसे चीरस्मरणीय बनाया है।

इन्हीं दिव्यभावों में पूज्य गुरुदेव का उल्लेख है जो यहाँ गुरुदेव की स्मृति दिवस पर प्रस्तुत है–

एक अनासक्त योगी

सन् 1974 में पूज्य गुरुदेव आगरा से विहार करते हुए राजगीर पहुँच रहे थे। राजगीर से पहले पावापुरी में रात्रि विश्राम के पश्चात् प्रात: पावापुरी के जलमंदिर में ध्यानस्थ बैठे थे। ध्यानस्थ अवस्था में घंटों बीत गये थे।

उनके दर्शन के लिए जब मैं और पूज्य गुरुमां श्री सुमति कुंवरजी राजगीर से पावापुरी पहुँचे तो हमने देखा कि गुरुदेव के अंगूठे पर एक कीड़ा है जिसके काटने से अंगूठे से खून निकल रहा है। उसी समय पुजारी भी आया तो मैंने उसे जल्दी से कीड़े को हटाने का संकेत किया। गुरुदेव तो अपने ध्यान में अन्तर्लीन थे। ध्यान की गहराई में उन्हें बाहर शरीर की कोई खबर, कोई चिन्ता नहीं थी। पुजारी ने तुरन्त उस काट रहे कीड़े को हटाया। और लोग भी दर्शनार्थ पहुँचे थे। गुरुदेव ने आंखें खोली और प्रसन्नता से वे सबको आशीर्वाद दे रहे थे, जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

कीड़े ने गहरा जख्म कर दिया था। फिर भी पूज्य गुरुदेव अपनी स्वाभाविक प्रसन्नता बिखेरते हुए राजगीर की ओर चल पड़े।

कठोर साधना के विषय में सुनना, पढ़ना और बोलना आसान है लेकिन ऐसी विशिष्ट साधना से गुजरते हुए किसी विरले साधक का दर्शन दुर्लभ है।

मैं सौभाग्यशाली हूँ कि परम पूज्य गुरुदेव उपाध्याय श्री अमरमुनिजी महाराज के रुप में ऐसे विशिष्ट साधक का मार्गदर्शन मुझे निरन्तर प्राप्त होता रहा। वस्तुतः गुरुदेव जैन समाज के ही नहीं, मानव समाज के गौरव है। कृतज्ञ है मानव समाज उस महान समत्वयोगी के प्रति।

क्रांति नहीं सुधार है जरुरी

एक सेठ ने गाँव के मुहाने पर एक बाग लगाया। हरे-भरे सघन वृक्षों से उसकी शोभा लोगों को आकर्षित करती थी। फल-फूलों से भरे वृक्ष बड़े लुभावने थे। पीने के लिए शीतल जल का तालब था। आने-जानेवाले राहगीर वहाँ बैठकर सुख और शान्ति का अनुभव करते थे। एक दिन सेठ का तरूण पुत्र वहाँ आया। इधर-उधर घुमते हुए उसको पैर में बबूल का कांटा गड़ गया। बड़ा क्रोध आया उसे। माली को बुलाकर रोष भरे स्वर में बोला, "इस मनहूस बाग को हटा दो, नष्ट कर दो और नया बाग लगाओ जिसमें कांटें न हो।"

सेठ को मालूम पड़ा तो उन्होंने माली से कहा, "खबरदार इस बाग को उजाड़ा तो। ये मेरे बाप दादाओं का बाग है। इस पर मेरा बहुत पैसा लगा है। वर्षों का परिश्रम इसके पीछे किया गया है। कांटें हैं तो क्या देखभाल कर चलो यहाँ। क्या बात है कि असावधानी अपनी और रोष बाग पर?

माली के सामने विकट संकट और टेढ़ी समस्या थी। पर माली चतुर था। उसने बाग में जो बबूल के पेड़ थे उन्हें हटाया और उनकी जगह हरे-भरे सघन छायादार फूलों के वृक्ष लगा दिये।

एक दिन पिता और पुत्र दोनों साथ आए। बाग को देखा। पुत्र प्रसन्न था कि अब उसमें कांटें नहीं थे। पिता प्रसन्न था कि मेरा बाग बरकरार है। चतुर माली के सुधार से दोनों प्रसन्न थे। क्योंकि इसमें दोनों के विचारों का सुमेल था। दोनों की समस्याओं का सुन्दर समाधान था। पुत्र क्रान्तिकारी था, पिता रूढ़ीवादी थे। परन्तु माली सुधारवादी था। जो बुरा था, निकाल दिया और जो अच्छा था उसे रख लिया।

मानव चेतना के तीन रुप

- उपाध्याय अमरमुनि

मनुष्य में तीन प्रकार की चेतना कार्य करती है– (1) कर्म चेतना, (2) कर्म फल चेतना और (3) कर्मज्ञान चेतना। इसे भावना भी कहा जाता है और अनुभूति भी। ये तीनों ही प्राणियों के आन्तरिक कार्य की प्रक्रियाएँ हैं। अतः जिस अनुसार आन्तरिक भावना कार्य करती है उसी अनुसार बाह्य कार्य सम्पादित होते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आन्तरिक चेतना का विश्लेषण करना चाहिए ताकि उसे स्वयं के बारे में पूर्ण अनुभव हो सके। चेतना के विश्लेषण से ही यह पता चल सकता है कि उसकी चेतना का बहाव किस ओर जा रहा है और उसका क्या परिणाम होगा और इसके क्या नतीजें निकलेंगे। इसलिए चेतना का चिन्तन अपेक्षित है। यही चिन्तन व्यक्ति के दृष्टिकोण का निर्धारण करता है। यह तय है कि सभी की चेतना एक जैसी नहीं होती, सबका दृष्टिकोण एक जैसा नहीं होता। यदि सभी में एक-सी चेतना-भावना कार्य करती तो सभी एक ही प्रकृति के होते। एक ही प्रकार के कर्म करते। एक जैसी बुद्धि, विवेक, शक्ति एवं क्षमता होती। पर ऐसा होता नहीं है। सभी की प्रकृति भिन्न होती है। तभी कोई अमीर तो कोई गरीब होता है। कोई साधक तो कोई पापी होता है। कोई वैज्ञानिक तो कोई अध्यापक होता है।

शास्त्रकारों ने चेतना के जो तीन रुप बतलाये हैं, उनमें एक है- कर्म चेतना। यह प्रत्येक क्षण व्यक्ति को सजग रखती है। मनुष्य प्रत्येक क्षण कुछ न कुछ करता ही रहता है। कभी वह अशुभ कर्म की धारा में बहता है तो कभी शुभ कर्म की धारा में। अशुभ कर्म की धारा-माया, मोह, ईर्ष्या आदि विकारों के प्रवाह में बह जाता है। इसी से हिंसा, असत्य आदि प्रवृत्तियों का जन्म होता है। और जब अशुभ कर्म का हेतु अहं नष्ट होता है तब पुण्य का बन्ध होता है। इस प्रकार हम पाते हैं कि कर्म चेतना में शुभ और अशुभ का बंध होता जाता है। यह व्यक्ति पर निर्भर होता है कि वह कैसे कर्म करता है। सिद्धान्त की दृष्टि से यह जो स्थिति है कि कर्म चाहे शुभ हो या अशुभ, है तो वह कर्म चेतना जिसके पीछे बंध है और बंध लाता है संसार। यह अन्योन्याश्रित है- बंध है संसार और संसार है कर्म बन्ध।

दूसरी चेतना है कर्मफल चेतना अर्थात् किये गये कर्मों के फल की ओर दृष्टि रखना। मनुष्य कर्म करता है और उसके फल की आशा रखता है। जो कार्य करता है उसमें

कर्तापन का भाव रखता है। कर्म फल चेतना में जब सुख का बंध होता है और उसका फल प्राप्त होता है तो मनुष्य भटक जाता है, पुनः पुनः आसक्तियाँ जन्म लेती हैं और मनुष्य उसमें लिप्त होता चला जाता है। सुख में भी और दुःख में भी उसकी आसक्तियाँ टूटती नहीं। दुःख को भी वह पकड़ कर रखना चाहता है। कहने के लिए कोई कह सकता है कि दुःख में कोई लिप्त नहीं होना चाहता। दुःख में भी लिप्त होते हैं लोग, उससे छुटकारे का प्रयत्न नहीं करते। किसी के कहे गये दुर्वचन कितने लम्बे समय तक याद रखे जाते हैं। याद ही नहीं रखे जाते बल्कि उन्हें बार-बार ताजा करके दुःखी होते रहते हैं। किसी के द्वारा अगर दुर्व्यवहार हो गया हो तो भुलाया नहीं जाता उसमें से भी मौके-बे-मौके याद करके दुःख का रस निकाल-निकाल कर खुद को दुःखी किया जाता है। कहानी भी मनुष्य वही पसंद करता है जिसमें बहुत सारा दुःख हो, तकलीफें हो। कठिनाईयों भरा जीवन ही जीवन लगता है, बिना कठिनाईयों का जीवन तो बोरियत लगता है। अतः वह दुःख पैदा करता है। अपने कर्मों से दूसरों को दुःखी करता है और फलस्वरूप स्वयं दुःखी होता है। राग-द्वेष में लिप्तता ही दुःख लिप्तता है। जहाँ सुख में राग से लिप्त होता है वहीं दुःख में द्वेष से लिप्त होता है। इस प्रकार कर्मफल चेतना - कर्मभोग चेतना बन्धन है, संसार है।

कर्मज्ञान चेतना-

तीसरी चेतना है- कर्मज्ञान चेतना। जहाँ कर्म किया नहीं जाता कर्म हो जाता है। जो हो रहा है, सहजभाव से हो रहा है। उसमें कर्तापन समाप्त हो जाता है। अहं का विसर्जन हो जाता है "अहं करोमि इति वृथाभिमानः।" मैं कर्ता हूँ यह व्यर्थ का अभिमान है। एक व्यक्ति सेवा करता है लेकिन यदि ऐसा भाव उत्पन्न होता है उसके अन्दर कि मैं सेवा करता हूँ तो यही 'अहं' है, यही कर्तापन है।

वस्तुतः सेवा एक आन्तरिक भाव है जो हृदय की श्रद्धा से उपजता है, उसमें अहं कैसा? वहाँ कर्तापन नहीं होता। जब सेवा की ज्योति जल उठती है तो कर्तृत्त्व टूट जाता है। अहं नष्ट हो जाता है। अहंकार से भरा व्यक्ति सेवा की महत्ता को नहीं समझ सकता।

अब्दुल रहीम खानखाना एक मनीषी व्यक्ति थे। थे तो मुस्लिम लेकिन आन्तरिक ज्ञान से सम्पन्न थे। वे सम्राट अकबर की सेना के सेनापति थे। मुस्लिम होते हुए भी वे कृष्ण-भक्त थे। कृष्णभक्ति काव्यधारा में ही उन्होंने पद रचना की है। आश्चर्य है कि जो हिन्दुओं को बुतपरस्त मानता है, मूर्तिपूजा का खण्डन करता है, मंदिरों और देवालयों को नष्ट करता है उसी मजहब का एक व्यक्ति कृष्णभक्ति शाखा में कैसे आ गया? और उसमें इतना लीन होता चला गया कि अपना सर्वस्व दान कर दिया। उस व्यक्ति में किसी

प्रकार का दम्भ न था। वह जब भी दान देता उसकी दृष्टि झुकी होती थी। एक बार एक व्यक्ति ने पूछा उनसे कि आप जब भी किसी को कुछ देते हैं तो आपकी दृष्टि झुकी रहती है ऐसा क्यों? इसमें क्या रहस्य है कि देते समय ही आपकी नजरें नीचे ढली रहती है? इस पर रहीम कहते हैं-

देनेवाला देत है, देता है दिन रैन।
लोग भरम मेरा करे, तासे नीचे नैन॥

देनेवाला देता है। मैं कहा कुछ देता हूँ। देनेवाला तो प्रभु है। लोग सोचते है कि दान मैं कर रहा हूँ। मैं तो उस महादाता की सम्पत्ति को बांटता हूँ। इसलिए मेरी दृष्टि नीचे झुकी रहती है। कितनी उच्चकोटि की भावना है। जहाँ कर्तापन का विसर्जन होता है वहाँ कार्य तो किया जाता है पर उसका अहंभाव नहीं रहता। जहाँ श्रेय लेने की बात आती है वहाँ विनम्र बालक-सा खड़ा हो जाता है। यह होती है कर्मज्ञान-चेतना।

इसी भक्ति की पराकाष्ठा ने स्तोत्रों को जन्म दिया है। प्राचीन और अर्वाचीन हजारों स्तोत्र है जो भक्त की समर्पण भावना से ओतप्रोत है। चाहे गणधरों की वाणी हो या साधारण जनों की, सभी में दिव्यभाव निहित है। जहाँ अहं का विसर्जन का भाव है, कर्तापन को भगवान के चरणों में समर्पित किया जाता है। सम्पूर्ण समर्पणभाव।

कहा जाता है- हे प्रभो! मुझे रोगमुक्त करो। तन-मन के रोग-आधि-व्याधि और उपाधि से मुक्त करो। मैं अनेक व्याधियों से पीड़ित हूँ। मुझे पीड़ाओं से मुक्त करो। मुझे समाधि दो। मुझे बोधि दो। "सिद्धा सिद्धि मम दिसन्तु।" मुझे बोधि दो, मुझे सिद्धि दो। ये प्रार्थनाएँ भगवान महावीर के चरणों में गणधरों ने, आचार्यों ने उपासक, उपासिकाओं ने की हैं। जिनके कर्णरन्ध्रों में प्रभु की वाणी साक्षात् गूंजी थी, जिन्हें प्रभु के चरणों को छूने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। फिर उनके हृदय से कर्तृत्व-भाव कैसे न निकलता, कैसे अहं का विसर्जन न होता?

आप अपने अहं का विसर्जन चाहे भक्ति से करे, चाहे दर्शन से करे, चाहे ज्ञान से करे। जब कर्तापन दूर हटने लगता है तब वह संसार से ऊपर उठने लगता है। क्योंकि जहाँ अहं नहीं वहाँ भार नहीं। निर्भार हो जाता है साधक। तात्पर्य यह है कि कर्म के अनुसार ही फल की प्राप्ति होती है। जहाँ कर्म चेतना है अर्थात् शुभ और अशुभ कर्म है वहाँ कर्म फल चेतना है, सुख-दुःख का बंध है। और जहाँ बंध है वहाँ संसार है।

जो कर्म ज्ञान चेतना है वह दिव्य है, इसमें बन्ध नहीं होता। पूर्व कर्म का बन्ध होगा भी तो वह कटता चला जाता है। कर्मज्ञान चेतना ही वह शुभ हेतु है जिससे आत्मोन्नयन प्राप्त होता है। आंतरिक ज्ञान के प्रकाश से साधक प्रकाशमान हो उठता है। संकुचित दृष्टि विस्तृत

होती है और तमाम बन्धन टूट जाते हैं। सारे कर्मों की निर्जरा हो जाती है। जहां न सुख रहता है न दुःख, न यश न अपयश। सारे द्वन्द्वों से परे एक विलक्षण स्थिति में स्थित होती हैं सिद्ध, बुद्ध, मुक्तात्मा। यह है कर्मज्ञान चेतना की स्थिति, जिसपर चलकर व्यक्ति अपना कल्याण पा लेता है।

भगवान महावीर के तप, त्याग, तेज एवं ज्ञान से वसुधा उद्भासित है। पर हम उस तेज का अवलोकन नहीं कर पा रहे हैं, क्योंकि हमारे अन्दर अन्धेरे ने अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया है। हम उस दिव्य प्रकाश को देख ही नहीं पा रहे हैं। ध्यान के क्षणों में, चिन्तन के क्षणों में जब कभी प्रभु महावीर को अन्तर हृदय में विराजमान करते हैं तो उनकी आभा से, उनके ज्ञान के प्रकाश से मन जगमगाने लगता है। प्रयोग करे और स्वयं ही अनुभव करे।

आज हम इतने संज्ञाशून्य हो गये हैं कि उस प्रकाश की एक किरण का भी दर्शन नहीं कर पाते हैं। प्रभु को हम देखते हैं कि वे जितने धूप में तपते हुए खुले आकाश तले बैठते थे, उतनी ही सहजता से स्वर्ण सिंहासन पर भी बैठते हैं। क्या राजमहल और क्या गिरिकन्दरा उनके लिए सब बराबर। राक्षसियों का भयंकर अट्टहास हो या देवांगनाओं का मृदु मधुर नृत्य, भीषण तूफान हो या मंद-मंद चलता शीतल पवन, हरक्षण उनके मन में समत्वभाव। वे बस! शान्त मौन भाव से अपने पथ पर आगे बढ़ते रहे, न उन्होंने दाये देखा न बाये। उन्होंने किसी ओर मुड़कर नहीं देखा। इतनी शक्ति कहाँ से प्राप्त हुई उन्हें, जिससे वे भीषण आपदाओं पर भी सहज ही विजय पाते गये? वस्तुतः यह सत्य की शक्ति थी जिस पर वे अडिग थे, जिसका उन्होंने साक्षात् किया था।

भगवान की वाणी गंगा के प्रवाह-सी प्रवाहित होती है जिसे पीना हो अंजुरी भर ले। वाणी सुनकर कोई कहता- प्रभु मैं श्रावक व्रत ग्रहण करना चाहता हूँ। प्रभु कहते "जहासुहं देवानुप्पिया।" कोई कहता- 'प्रभु मैं आपके चरणों में सम्पूर्ण त्याग-व्रत, साधुव्रत ग्रहण करना चाहता हूँ। प्रभु यही उत्तर देते- "जहासुहं देवानुप्पिया!" प्रभु अपने उपदेशों को किसी पर थोपते नहीं थे कि अरे! तुम यह क्या कर रहे हो? ऐसा मत करो। करो और न करो इन दोनों से परे है प्रभु।

आजकल कुछ साधु और साध्वी जबरदस्ती त्याग करवाते हैं अगले व्यक्ति का मन नहीं है तब भी उसपर नियम थोप देते हैं। कभी-कभी तो सब्जी बाजार में होती नाप-तोल-सा दृश्य हो जाता है। नियम देनेवाले साधु महाराज कहते हैं तुम पांच माला का जाप करना। नियम लेनेवाला कहता है, "नहीं महाराज में एक माला कर सकता हूँ" और किसी तरह दो माला के जप पर समाधान

होता है। क्या इस तरह की सौदेबाजी त्याग है? भगवान महावीर इसे त्याग नहीं कहते। उन्होंने अपने त्याग और अपने ज्ञान का प्रदर्शन नहीं किया। जेसे फूल खिलता है और सुगन्ध फैलती है, जैसे सूर्य उदित होता है और प्रकाश फैलता है। बस उनके ज्ञान का प्रकाश फैलता रहा, उनकी वाग्गंगा प्रवाहित होती रही। जिस साधक में उनके ज्ञान की एक किरण भी पहुँची उसके ज्ञान चक्षु खुल गये, उसकी अन्तरात्मा अनन्त प्रकाश से जगमगा उठी।

प्रभु महावीर की आत्मा एक ऐसी समत्वभाव से सम्पन्न आत्मा थी कि भयंकर से भयंकर कष्टों में भी वे सहजभाव में रहे। लोगों ने उनपर पत्थर फेंके, कुत्तें तक छोड़े उनपर लेकिन अद्भुत था उनका संयम। और जब उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ तो देवताओं ने देवदुन्दुभी बजाई, पुष्पवर्षा की तब भी प्रभु समत्वभाव में स्थित रहे। यही है ज्ञान चेतना।

ज्ञान चेतना सर्वोपरि है। कर्मचेतना एवं कर्मफल चेतना दोनों ही बंधकारी है। ज्ञानचेतना इन दोनों से परे, सुख से परे, और दुःख से भी परे है। लिप्तता दोनों में नहीं है। वह आत्मा कर्म करता हुआ भी कर्म से ऊपर रहता है। यह सम्यक्त्व है और यही सम्यक् ज्ञान है।

शीर्षासन - कम और जादा का

प्रकृति से मनुष्य को मिले हैं
दो हाथ,
दो पैर,
दो कान,
दो आंखें,
पर जीभ मात्र एक ही मिली है।
प्रकृति का क्या संदेश है इसमें?
वह संदेश है–
जितना देखते हो,
जितना सुनते हो,
जितना श्रम करते हो,
उससे आधा बोलो।
लेकिन–
मनुष्य उल्टा करता है।
देखता कम है
सुनता कम है
करता भी कम है
और –
बोलता ज्यादा है।
यही मनुष्य की समस्या का मूल है।

सेवा, शिक्षा, साधना की अमृत त्रिवेणी वीरायतन की **स्वप्नद्दष्टा पद्मश्री डॉ. आचार्यश्रीजी**

"सन्त समाज को केवल सेवा का उपदेश ही नहीं बल्कि सक्रिय सेवा का मार्ग भी अपनाना चाहिए। जन सेवा जिन सेवा है" ऐसे सिद्धान्त के द्दढ़ विश्वासी आचार्यश्रीजी पूज्य ताई माँ को भारत सरकार ने "पद्मश्री" सम्मान से सम्मानित किया है। जैन धार्मिक जगत में आचार्य पद प्राप्त करनेवाले वे प्रथम साध्वीजी है।

चन्दनाश्रीजी की विशेषता है कि वे धर्म के मूल सिद्धान्त को पकड़ते है। प्रचलित विचारों की परंपरा पर वे अन्धविश्वास नहीं करते। समग्र जीवजगत के प्रति उन्हें असीम प्रेम और करूणा है। वे आज जिस ऊँचाई पर पहुँचे हैं वह रास्ता सरल नहीं था। अनेक कठिनाइयों का उन्हें सामना करना पड़ा है। लेकिन वे अपने विचारों पर द्दढ़ रहे। "एकला चलो रे" की धुन के साथ आगे बढते रहे। उन्होंने रूढ़ परम्परा से हटकर एक नया रास्ता बनाया।

उनकी वाणी और व्यवहार में सत्य का तेजस्वी रूप मुखरित होता है। फलत: उनके परिचय में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को उनके माधुर्य और करूणा के दर्शन होते हैं। वे महावीर के मूल सिद्धान्त को निष्ठा पूर्वक मानते हैं किन्तु उन्हें परंपरा गत क्रियाकाण्ड या अन्धानुकरण में विश्वास नहीं है। उनकी बात कोई माने या न माने लेकिन वे अपनी आस्थानुसार निस्वार्थ सेवाकार्य करते रहते हैं। इसीलिए वे सबके प्रेम और श्रद्धा के केन्द्र बन गये हैं। उनका सर्वहिताय परोपकारी जीवन महिला शक्ति का उज्जवल उदाहरण है।

धार्मिक क्षेत्र में चन्दनाश्रीजी ने वैचारिक क्रान्ति लाई है। पर यह कार्य कठिन था। धर्मशास्त्र के मूलसिद्धान्त समय की गति के साथ बहुत बार परंपरा और शुष्क क्रियाकाण्ड में उलझ जाते हैं। आचार्य श्री चन्दनाजी ने शास्त्रों के मूल सिद्धान्तों को समय के परिप्रेक्ष्य में नया भौतिक अर्थघटन दिया है। वे उपदेश के साथ स्वयं सेवा करने में विश्वास रखते हैं। वीरायतन के माध्यम से उन्होंने सक्रिय सेवा का नया मार्ग बनाया है। आज वीरायतन सेवा का विश्वव्यापी अभियान बन गया है।

सत्य के प्रति अटूट श्रद्धा, ज्ञान की प्रखरता और परिस्थिति के सामने लड़ने का उनका साहस ऐसा अद्भुत रहा कि उन्होंने सस्ति ख्याति और झूठी नीतिओं के साथ कभी समझौता नहीं किया। वे स्वप्न द्दष्टा है और

सृष्टा भी है। वे केवल सिद्धान्तों को मानते ही नहीं उसे क्रियान्वित भी करते हैं। यह उनकी विशेषता है।

तीर्थक्षेत्रों में आत्मसाधना के साथ उन्होंने जनकल्याण की प्रवृत्ति भी शुरू की। यह उनकी क्रान्तिकारी पहल थी। "जहाँ जिनालय वहाँ विद्यालय, वहाँ चिकित्सालय" ऐसा सर्व जनहिताय सर्वजनसुखाय रूप वीरायतन वस्तुत: सेवायतन है। जहाँ वे अपनी शिष्याओं के साथ विविध सेवा प्रकल्पों का सुन्दर संचालन करते हैं।

वीरायतन की स्थापना

1973 में जब आचार्य चन्दनाश्रीजी महावीर की पावन भूमि में आये तब उन्होंने अद्भुत रोमांच अनुभव किया। पर उन्होंने देखा कि महावीर की इस भूमि में अहिंसा भुला दी गई है। महावीर की यह भूमि असामाजिक तत्त्वों से व्याप्त हो गयी है। तब यहाँ सड़क, बीजली, सुरक्षा जैसा कुछ भी नहीं था। ऐसी भूमि पर उन्होंने सेवा का दीप प्रज्वलित किया। जिसका नाम है 'वीरायतन' जिसका अर्थ है भगवान महावीर की पावन भूमि। वीर याने महावीर और आयतन का अर्थ है महावीर के उपदेश की भूमि।

यहाँ भगवान महावीर के 14 चातुर्मास हुए हैं। उन्होंने देखा कि राजगीर का वह क्षेत्र बहुत ही अविकसित और पिछड़ा है। लोग वहाँ विपरीत परिस्थितियों में अपना जीवन गुजार रहे हैं अत: उनके उत्थान हेतु आचार्यश्रीजी ने वहाँ सेवाकार्य की शुरूआत की। तीर्थंकर महावीर की करूणा निष्क्रिय नहीं, सक्रिय थी। इसी आदर्श पर सन् 1973 में रूढ़ीगत परम्परा को छोड़कर आचार्यश्रीजी ने सक्रिय सेवा के मार्गपर राजगीर की उस अनजान किन्तु दिव्य भूमि पर कार्य शुरू किया। सर्वप्रथम नेत्रयज्ञ द्वारा लोगों की आँखों में रोशनी देना प्रारम्भ किया। आज वहाँ अद्यतन सुविधा सम्पन्न ऑइ हॉस्पिटल है जहाँ अबतक साडेतीन लाख से अधिक आँखों के ऑप्रेशन तथा 40 लाख लोगों की नेत्रचिकित्सा एवं करीब 2 लाख लोगों की दन्त चिकित्सा की गई है। वीरायतन का कार्य मात्र राजगीर तक ही सीमित नहीं है बल्कि विश्वभर में फैला हुआ है। आज वीरायतन एक अभियान बन गया है।

वीरायतन के सेवाकार्य

2001 में कच्छ मे आये भूकम्प के समय आचार्यश्रीजी ने वहाँ अद्भूत सेवाकार्य किया। ऐसी प्राकृतिक आपदाओं में तत्कालीन राहत सेवा तो देते ही है वे लेकिन आपद्ग्रस्त लोगों के दीर्घकालीन विकास के लिए भी आचार्यश्रीजी सोच रखते हैं जिसका उदाहरण है कच्छ। भूकम्प के बाद वीरायतन द्वारा आचार्यश्रीजी ने वहाँ सेवा के विविध विकल्प प्रारम्भ किये हैं जो उनकी द्दष्टि सम्पन्नता के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। सेवा के साथ नयी पीढी के जीवन निर्माण की दिशा में पूज्य ताई माँ ने

शिक्षा क्षेत्र का भी विकास किया। शिक्षा केवल अक्षरज्ञान या मात्र मनिमेकिंग हेतु नहीं पर मूल्यवर्धक शिक्षा दी जाती है। जिससे बच्चे मानवता युक्त मानव बनें। उनके जीवन में प्रभु महावीर की करूणा एवं मैत्री विकसित हो सके।

ऐसे शिक्षाकेन्द्र देश के अनेक राज्यों में- बिहार, राजस्थान, गुजरात, कच्छ, महाराष्ट्र, बंगाल, उत्तरप्रदेश में कार्यरत है। जो "तीर्थंकर महावीर विद्यामंदिर" के नाम से प्रसिद्ध है। राजगीर, पावापुरी, लछुआड़, जखनिया, हरिपर, रूद्राणी, पालीताणा, सांचोर ओसियाजी, जयपुर, मेरठ, गाधा [हरियाणा] बगेरे स्थानों में हजारों विद्यार्थी प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।

नवल वीरायतन

सह्याद्री की गोद में नवल वीरायतन स्थापित है। इस अद्‌भुत केन्द्र में सांस्कृतिक और आध्यात्मिक शिक्षा दी जाती है। समय-समय पर शिविर के आयोजन होते हैं।

श्री चन्दना विद्यापीठ

नयी पीढी के बालकों में संस्कारों के बीजारोपण हेतु आचार्यश्री चन्दनाश्रीजी ने "श्री चन्दना विद्यापीठ" की स्थापना की। जिसके अनेक केन्द्र देशविदेश में चल रहे हैं।

विदेश में "वीरायतन इन्टरनेशनल"

अमेरिका, इंग्लैण्ड, केन्या, केनेडा आदि देशों में भी वीरायतन के केन्द्र है। वीरायतन के साध्वीजी इन केन्द्रों में प्रवचन, कार्यशाला द्वारा आध्यात्मिक विकास हेतु "श्री चन्दना विद्यापीठ" के माध्यम से मार्गदर्शन देते हैं।

विविध पुरस्कारों से अलंकृत आचार्यश्रीजी

जैन समाज के प्रतिष्ठित 'आचार्य' पद द्वारा सम्मानित प्रथम जैन साध्वी Mahavir Foundation Award exalted service to mankind (1995)

- संतबल अेवार्ड (1995)
- अहिल्याबाई राष्ट्रीय सेवा पुरस्कार भारत सरकार द्वारा (2002)
- जैना प्रेसिडेन्सियल अेवोर्ड जैना, यु॰एस॰ए॰ द्वारा (2007)
- गोंडलगच्छ शिरोमणी नेत्रज्योति प्रदाता द्वारा पूज्य जयंत मुनि 'विश्वविभूति' पदवी से विभूषित (2012)
- भारत सरकार द्वारा 'पद्‌मश्री' (2023)
- स्त्रीशक्ति राष्ट्रीय पुरस्कार, सूर्यदत्ता ग्रुप ओफ् इन्स्टिट्यूट द्वारा (2023)

प्रभु महावीर की करूणा को सेवाकार्यों से प्रकाशित करते आचार्यश्री चन्दनाजी का 'पद्‌मश्री' अेवार्ड से सम्मान यह वस्तुत: उनकी धर्मनिष्ठा, सत्यनिष्ठा और सेवानिष्ठा की अनुमोदना है।

आचार्यश्री चन्दनाश्रीजी ने अशक्य को शक्य किया है। फिर भी इतने व्यापक सेवाकार्य के बाद भी वे सन्तोष से बैठे नहीं

रहते, किन्तु नये सेवाकार्य के लिए निरन्तर चिन्तनशील एवं उद्यमशील रहते हैं।

जैन धर्म के इतिहास में दीक्षितवर्ग द्वारा सर्वप्रथम सक्रियसेवा की स्थापना करके एक क्रान्तिकारी अध्याय की शुरूवात कर्ता आचार्यश्री चन्दनाश्रीजी कहते हैं- 'प्रत्येक कर्म धर्म बन सकता है।' अपने निस्वार्थ कार्य से अनेकानेक लोगों को उन्होंने प्रेरित किया है। सत्यत: वे जैन विश्व के एक महान और बहुमूल्य रत्न है।

-स्त्री शक्ति राष्ट्रीय पुरस्कार के अवसर पर अभिव्यक्त उद्‌गार

Pujya Tai Ma awarded

Suryadatta Stree Shakti Rashtriya Puraskar

We are delighted to announce that Pujya Tai Ma was conferred with the prestigious Suryadatta Stree Shakti Rashtriya Puraskar for excellence in the field of 'Spiritual Science and Welfare of Mankind across the Globe'. The award was presented by the Governor of Maharashtra, He Honourable Shri Ramesh Bais.

The Suryadatta Stree Shakti Rashtriya Puraskar is bestowed by Suryadatta Education Foundation's Suryadatta Group of Institutes every year. The awards are conferred upon individual women in recognition of their spirit of courage, their pioneering contribution in empowering women and their exceptional achievements.

Suryadatta education Foundation's Suryadatta Group of Institutes recognised PUjya Tai ma for her exemplary work in the field of Seva, Shiksha and Sadhana for 5 decades and being instrumental in transforming the lives of millions by providing education and medical care for all.

पद्मश्री डॉ. आचार्यश्रीजी का उद्बोधन

मेरे आत्मप्रिय!

सूर्यदत्ता का रजत महोत्सव का यह मंगलमय प्रसंग है। मुझे खुशी है कि मैं इस अवसर पर यहाँ उपस्थित हूँ। शुभभावनाओं से ओतप्रोत यह उत्सव भी एक धार्मिक उत्सव है। शुभकार्यों की अनुमोदना का उत्सव है। यह उत्सव है उन वीरांगनाओं के सम्मान का जिन्होंने खुद से ऊपर उठकर दूसरों के जीवन में सुख, समृद्धि और आनन्द बिखेरने के प्रयास किये हैं। मैं उन सबका अन्तर्हृदय से सम्मान करते हुए आशीर्वाद प्रेषित करती हूँ। सबसे बड़ी और महत्त्वपूर्ण बात है कि दूर-सुदूर प्रदेशों में कार्यरत इन मातृशाक्ति के शौर्य, साहस और पुरूषार्थ की खोज करना और उनके उत्साह को द्विगुणित करना। बड़ा कठिन कार्य है यह। ऐसे कठिनतम कार्य को पूरे उत्साह और उमंग के साथ निरन्तर करते आ रहे डॉ॰ श्रीमान् संजयजी चोरडिया एवं श्रीमती सुष्माजी चोरडिया। उनके उदार हृदय के साथ उदार हाथों के लिए मैं अहोभाव व्यक्त करती हूँ। उनका यह कार्य निरन्तर-निरन्तर विस्तार पाता रहे। यह हार्दिक शुभेच्छा।

विशेष अतिथि श्याम जाजू (माजी राष्ट्रीय उपाध्यक्ष बीजेपी) और H.E Hon'ble Shri Ramesh Bais Govenor of Maharashtra इन्होंने अपने व्यस्त कार्यक्रम में से समय निकालकर उत्सव की गरिमा बढ़ाई है। मैं उनका सम्मान करती हूँ।

जहाँ तक मेरे पुरस्कार की बात है, मैं आपकी भावना का खूब सम्मान करती हूँ। किन्तु मुझे लगता है कि अभी करने जैसा बहुत है। जो कुछ कर पायी हूँ वह बूंदभर भी नहीं है। वस्तुतः संघर्ष में ही समय अधिक व्यतीत हो गया। आप जानते हैं कि परम्परागत मान्यता

के अनुसार एक जैन साध्वी के लिए यह असंभव था कि वह हॉस्पिटल, स्कूल, कॉलेज चलाए, अपराधियों के बीच जाकर उन्हें अपराधमुक्त होने का प्रशिक्षण दे या भूकम्प, सुनामी, बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं में उपस्थित होकर राहत सेवा के कार्य करें। मुझे इस संघर्ष में से गुजरना पड़ा। जब भी दुनिया में परम्परा से हटकर नया कार्य होता है, विशेषतः धार्मिक क्षेत्र में तो पहले वह स्वीकार नहीं होता। लेकिन धीरे-धीरे प्रयत्न करने के बाद समाज के लोगों का सहयोग मिलता गया और कार्य को गति मिलती गयी। मैं राज्यपाल महोदय से कहना चाहती हूँ कि वे जरूर वीरायतन की विजिट करें। जब महामहिम राष्ट्रपति महोदय रामनाथ कोविन्द वीरायतन आये थे, उन्होंने वहाँ की जनसेवा की प्रवृत्तियों को, स्कूल, कॉलेज और हॉस्पिटल को देखा तो उन्होंने कहा "यह आपका कार्य केवल बिहार में ही नहीं बल्कि देश के हर प्रान्त में और हर कोने में होना चाहिए।" उन्होंने वीरायतन के द्वारा किये जा रहे कार्यों को प्रोत्साहित किया।

मैं मानती हूँ कि देश में इण्डस्ट्रीज चाहिए, उद्योग चाहिए, काम चाहिए लेकिन साथ ही साथ जब तक मनुष्य के विचारों में संस्कार न हो, एक दूसरे के प्रति प्रेम न हो तबतक हमारी जितनी भी सेवाएँ हैं, शिक्षा और साधना हैं सब अधूरी होगी, उसमें पूर्णता नहीं आएगी।

वीरायतन में आनेवाले सभी लोग साथ मिलकर कार्य करते हैं। उनमें परस्पर प्रेम हैं। मैंने कभी किसी से जाति नहीं पूछी न धर्म पूछा। गुरूदेव उपाध्याय अमर मुनिजी महाराज ने कहा है-

एक जाति हो, एक राष्ट्र हो,
एक धर्म हो धरती पर।
मानवता की अमर ज्योति,
सब ओर जगे जन-जन, घर-घर।।

आज दुनिया में युद्ध होते हैं, धर्म कहाँ है? लाखों व्यक्ति धर्म की बातें करते हैं, मन्दिर बनाते हैं, मस्जिद बनाते हैं। लेकिन युद्ध होता है और धर्म कहीं दिखाई नहीं देता।

भगवान महावीर ने अपने अन्तिम संदेश में कहा था- "मेत्तिं भूएसु कप्पए" मैंने अपने जीवन मे बस एक ही बात सीखी है और वह है भगवान महावीर का यह मैत्री संदेश जिसे मैं जन-जन तक पहुँचाना चाहती हूँ। अगर तुम कुछ कर सको तो सबके साथ मैत्री का भाव रखो, करूणा का भाव रखो। यही संदेश है जिससे कि सारी दुनिया सुखी हो सकती है।

-द्वारा-
"सुर्यदत्ता स्त्रीशक्ति राष्ट्रीय पुरस्कार" से सम्मानित श्रद्धेय आचार्य डॉ॰ श्री चन्दनाजी "श्री ताई माँ"

भारत की विराट आत्मा

– उपाध्याय अमरमुनि

महान भारत का अतीत युगीन मानचित्र उठाकर देखते हैं, तो उसमें भारत की विराट आत्मा के दर्शन होते हैं। भारत के गौरवपूर्ण इतिहास को पढ़ने वाले भली-भाँति जानते हैं, कि इस युग का क्षेत्रफल कितना विशाल और कितना विराट था? आज का पाकिस्तान ही नहीं, उसे भी लाँघ कर आज के काबुल के अन्तिम छोरों तक भारत का जन-जीवन प्रसार पा चुका था। केवल भूगोल की दृष्टि से ही उस युग का भारत विस्तृत और महान नहीं था, बल्कि विचारों की उच्चता में, सभ्यता के प्रसार में और अपनी संस्कृति तथा धर्म के फैलाव में भी भारत महान और विराट था। उस युग के भारत का शरीर भी विशाल था और उसकी आत्मा भी विराट थी। आज का भारत क्या पूछते हो तुम आज के भारत की बात? वह देह से भी छोटा और ओछा होता जा रहा है और विचारों से भी बोना बनता चला जा रहा है। यह एक खतरा है।

मैं आपसे भारत की विराटता की बात कह रहा था। परन्तु, प्रश्न यह है, कि वह विशालता और विराटता कहाँ से आयी और कहाँ चली गई? प्रश्न के समाधान के लिए हमें विचार महासागर के अन्तस्तल का संस्पर्श करना होगा।

जन जीवन की संस्कारिता और समुज्ज्वलता किसी भी देश की शिक्षा और दीक्षा, आदेश और उपदेशों पर निर्भर रहा करती है। पुरातन भारत में शिक्षा और दीक्षा दोनों साथ-साथ चला करती थी, जन जीवन के ये दोनों अविभाज्य अंग माने-समझे जाते थे। जन जीवन की वेधशाला में विज्ञान के साथ उसका प्रयोग भी चलता था। प्राचीन भारत में शिक्षा के बड़े-बड़े केन्द्र खुले हुए थे, जिन्हें उस युग की भाषा में 'गुरुकुल' कहा जाता था। आज जिन्हें आप-हम कॉलेज और युनिवर्सिटी कहते हैं। आज के ये शिक्षा-केन्द्र नगर के कोलाहल-संकुलित वातावरण में चलते हैं, परन्तु वे गुरुकुल वनों और जंगलों के एकान्त में, शान्त वातावरण में चलते थे। मानव के नैतिक जीवन की पावनता की सुरक्षा जितनी प्रकृति माता की मंगलमयी और मोदभरी गोद में रह सकती है, वैसी भोग-विलास से भरे-पूरे नगरों में नहीं। गुरुकुलों के पुण्य प्रसंगों में आचार्य और उनके शिष्य एक साथ रहते-सहते, एक साथ खाते-पीते और एक

साथ उठते-बैठते थे। आचार्य अपने शिष्यों को जो भी शिक्षा देता, वह आज की तरह पोथी-पन्नों के बल पर नहीं, बल्कि वह ज्ञान को आचरण का रूप देता था, जिसका शिष्य अनुसरण करते। शिक्षा को दीक्षा में उतार कर बताया जाता था। ज्ञान को कर्म में उतारा जाता था। बुद्धि और हृदय में समन्वय साधा जाता था। उस युग का आचार्य या गुरु अपने शिष्यों से या अपने छात्रों से स्पष्ट शब्दों में चेतावनी और सावधानी देता हुआ कहता था– "यान्यस्माकं सुचरितानि तान्येव सेवितव्यानि नो इतराणि।"

मेरे प्रिय छात्रों! मैं तुमसे स्पष्ट शब्दों में जीवन का यह रहस्य कह रहा हूँ कि तुम मेरे सुचरितों का और सद्गुणों का अनुसरण करना, परन्तु दुर्बलता और कमजोरी का अनुसरण मत करना। जीवन में जहाँ कहीं भी सद्गुण मिले ग्रहण करो और दोषों की ओर मत देखो। ये हैं, वे प्राचीन भारत की शिक्षा-दीक्षा के जीवन-सूत्र, जो देश और समाज की बिखरी शक्ति को संयत करते हैं और राष्ट्र की आत्मा को विशाल बनाते हैं।

मैं आपसे कह रहा था, कि उस युग का भारत इतना विराट क्यों था? किसी भी देश की विराटता वहाँ के लम्बे-चौड़े मैदान, ऊँचे गगन-चुम्बी गिरि और विशाल जनमेदनी पर आधारित नहीं होती। उसका मूल आधार होता है– वहाँ के जन जीवन में धर्म की भावना और मन की विराटता। छात्रजन गुरुकुल की शिक्षा को पूरी करके अपने गृहस्थ जीवन में जब वापिस लौटता, तब अपने दीक्षान्त भाषण में आचार्य कहता था– "धर्मे ते धीयतां बुद्धिर्मनस्ते महदस्तु च।"

वत्स! तुम्हारी बुद्धि धर्म में रमे। तुम अपने जीवन के क्षेत्र में कहीं पर भी रहो, परन्तु अपने धर्म, अपने सत्कर्म, अपने शुभ संकल्प और अपने जीवन की पवित्रता को न भूलना। जीवन के संघर्ष में उतरते ही तुम्हारे मार्ग में विकट संकट, विविध बाधाएँ और अनेक अड़चनें भी आ सकती हैं, किन्तु उस समय भी तुम अपने मन में धैर्य रखना, अपने धर्म के प्रति वफादार रहना, अपने सदाचार के प्रति वफादार रहना तथा अपने जीवन की पवित्रता, जो वंश परम्परा से तुम्हें प्राप्त है और जो भारत की संस्कृति का मूल है– उस धर्म को तुम कभी न भूलना और अपनी बुद्धि को सदा धर्म के संस्कारों से संस्कृत करते रहना। एक ओर शूली की नोंक हो और दूसरी ओर धर्म त्यागने की बात हो, तो तुम शूली की पैनी नोंक पर चढ़ जाना, परन्तु अपने धर्म को कभी मत छोड़ना। जीवन में धन बड़ा नहीं, धर्म बड़ा है। मान बड़ा नहीं, धर्म बड़ा है। अपनी बुद्धि को धर्म में लगा

देना, धर्म में रमा देना।

आचार्य आगे फिर कहता है– "मनस्ते महदस्तु च- वत्स! तेरा मन विराट हो, तेरा हृदय विशाल हो।" भारत का दर्शन और धर्म मानव के मन को विराट बनने की प्रेरणा देता है। मनुष्य के मन में जब छोटापन और हृदय में जब क्षुद्रता पैठ जाती है, तब वह अपने आप में घिर जाता है, बन्द हो जाता है। उसके मानस का स्नेह-रस सूख जाता है, उसके मन में किसी के भी प्रति स्नेह और सद्भाव नहीं रहता। हृदय की क्षुद्रता और लक्ष्य की संकीर्णता मनुष्य के जीवन में सबसे बड़ा दोष है। इस दोष के कारण ही मनुष्य अपने परिवार में घुल-मिल नहीं पाता, वह घर में जब जाता है, तो सबके चेहरों की हंसी गायब हो जाती है। औछे विचारों का मनुष्य अपने समाज और राष्ट्र के जीवन में भी मेल-मिलाप नहीं साध सकता। उसकी संकीर्णता की दीवार उसे विश्व के विराट तत्त्व की ओर नहीं देखने देती। भारत का दर्शन और भारत का धर्म मानव मन की इस संकीर्णता को, क्षुद्रता को और अपनेपन को तोड़ने के लिए ही आचार्य के स्वर में कहता है– "मनस्ते महदस्तु च।" मनुष्य तेरा मन महान् हो, विराट हो। उसमें सबको समा जाने की जगह हो। तेरा सुख सबका सुख हो। तेरे अन्तर मन में परिवार, समाज और राष्ट्र के प्रति मंगलमयी भावना हो। कल्याण की कामना हो। अपनेपन की सीमा में ही तेरा संसार सीमित न हो, समग्र वसुधा तेरा कुटुम्ब हो, परिवार हो।

तो, भारत की विराटता और विशालता का अर्थ हुआ– यहाँ के दर्शन और धर्म की विशालता। भारत का धर्म और दर्शन जो कभी यहाँ के जन-जन के मन में रमा हुआ था, वह पोथियों में बन्द है, मन्दिर और मस्जिदों की दीवारों में कैद है। धर्म और दर्शन जब जन जीवन में उतरता है, तब उस देश की आत्मा विराट बनती है। शरीर की विशालता को भारत महत्त्व नहीं देता, वह महत्त्व देता है मन की विराटता को। शरीर की विशालता कुम्भकर्ण, कंस और दुर्योधन को पैदा करती है, जिससे संसार में हाहाकार मचता है और तूफान आता है, परन्तु मन की विराटता में से राम, कृष्ण; महावीर बुद्ध अवतार लेते हैं– जिससे संसार में सुख, शान्ति और आनन्द का प्रसार होता है। देश फलता और फूलता है।

मैं आपसे कह रहा था, कि भारत के उन्नयन का कारण भारत के धर्म और दर्शन के उन्नयन में रहा हुआ है, जिस देश के निवासियों का हृदय विशाल हो, मन विराट हो, उसमें धर्म-तत्त्व रमा हो, दर्शन-तत्त्व के अमृत से जिस देश के हृदयों का अभिसिञ्चन हुआ हो, वह देश फिर विराट और विशाल क्यों न हो?

राजगीर में एक और स्वर्ण भण्डार
अद्भुत है वीरायतन की लाईब्रेरी

राजगीर में पर्यटकों की भीड़ बढ़ती जा रही है। शोर और कोलाहल भी बढ़ रहा है, लेकिन यहीं है वीरायतन, जहां अब भी पहाड़ों की शांति महसूस की जा सकती है। वीरायतन के सैकड़ों पेड़ों पर विविध तरह के पक्षियों का बसेरा भी है, जिनकी चहचहाहट कहीं और नहीं मिलेगी। कोई यहां ठौर बनाए पक्षियों की प्रजाति और उनकी संख्या गिने तो, बेहतर होगा। वीरायतन में प्रसिद्ध आंखों का अस्पताल है, भगवान महावीर से जुड़े इतिहास पर आधारित म्यूजियम है, लेकिन एक और खास चीज है। वह है यहाँ की लाईब्रेरी-ज्ञानांजलि।

वीरायतन की इस ज्ञानांजलि में ऐसी बेशकीमती पुस्तकें हैं, जो बिहार में कहीं और नहीं मिलेंगी। भारत के विविध दर्शन पर यहां गंभीर पुस्तकें हैं। साहित्य, इतिहास, राजनीति, भाषा, संस्कृति पर तो पुस्तकें हैं ही, अगर आप अभिनय (एक्टिंग) में रुचि रखते हैं, तो उस विषय पर भी ऐसी पुस्तकें मिलेंगी, जैसी शायद ही बिहार की किसी लाईब्रेरी में मिले।

वीरायतन परिसर में पद्मश्री आचार्यश्री चंदनाजी के निवास के निकट ही पुस्तकालय का सुंदर और साफ भवन है, जिसमें दस हजार से ज्यादा पुस्तकें हैं। इन पंक्तियों का लेखक जब पुस्तकालय में पहुंचा, तो जैसे लगा चारों तरफ हीरे-मोती बिखरें हैं। खास बात यह है कि आप जितना लेना चाहें ले सकते हैं। कोई रोक नहीं। भीतर अर्द्धगोलाकार बड़े कक्ष में पुस्तकों की आलमारियां भी अर्द्धगोलाकार सजी हैं। कई अलमारियों में हस्तलिखित पुस्तकें भी सुरक्षित हैं, जो मुख्यतः दर्शन पर केंद्रित हैं।

राहुल सांकृत्यायन की बौद्ध धर्म पर अनेक खोजी पुस्तकें हैं। यहीं भाषा पर पुस्तकों की एक सीरिज ने चौका दिया मुझे। मोटी-सी पुस्तक हिंदी विश्वकोष देखकर पहले लगा कि यह कोई आम डिक्शनरी है। फिर देखा कि वह 13 खंडों में है, तो रुचि बढ़ी। अब तक मैंने किसी डिक्शनरी के 13 खंड नहीं देखे थे। एक पुस्तक उठाई, तो चकित रह गया। यह विश्वकोष अ अक्षर से शुरू होनेवाले शब्दों पर था। एक-एक शब्द के बारे में तीन-तीन, चार-चार पेज में विवरण दिया गया है। जैसे उंगली का अर्थ हम सब समझते हैं, लेकिन इस विश्वकोष में उंगली के बारे में इतनी विस्तृत जानकारी दी गई है कि आप ठहर जाएंगे। एक पेज में उंगलियों से दर्जनों भाव प्रकट करने के फोटो हैं। हर उंगली का महत्त्व आदि-आदि। खास बात यह है कि उर्दू, फारसी, अरबी के प्रमुख नामों, शहरों के बारे में भी दो-दो-तीन-तीन पेज में विस्तार से वर्णन है। विश्वकोष की सिरीज लगभग सौ साल पहले नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित है। अ से आर्यभट्ट का अर्थ बताते हुए यह भी बताया गया है कि आर्यभट्टीय में उनके 121 श्लोक हैं, जो चार खंडों-गीतिकापाद, गणितपाद, क्रियापाद तथा गोवपाद में विभाजित हैं। इमली के बारे में हम कितना कम जानते हैं, यह इसी विश्वकोष से पता चला। इसमें इमली का पूरा इतिहास ही लिखा है। ऐसे ही हर शब्द के बारे में आधिकारिक और विस्तृत जानकारी दी गई है। जैन, बौद्ध तथा हिन्दू धर्म पर सैकड़ों की संख्या में शोधपूर्ण पुस्तकें हैं। राहुल सांकृत्यायन, ओशो की पूरी सिरीज है। सारे वेद, उपनिषद हैं। और जैन धर्म के विविध पुस्तकों और टीकाओं की लंबी फेहरिस्त है।

आप जब भी राजगीर जाएं, तो वीरायतन के इस अमूल्य भंडार से जरूर झोली भरें। वीरायतन की लाईब्रेरी आपका जीवन बदल सकती है।

–कुमार अनिल, समाचार सम्पादक,
नौकरशाही डॉट कॉम, पटना

धन्यवाद देना न भूले

रोटी खाने से अधिक समय, रोटी बनाने में लगता है।
रोटी बनाने से अधिक समय, रोटी कमाने में लगता है।
रोटी कमाने से अधिक समय, उसे उगाने में लगता है।
अत:
रोटी खुश होकर खायें और खाकर धन्यवाद जरुर दें।
कमाने वाले को, बनाने वाले को और उगानेवाले को भी।

गारियाधार-पालिताणा में फ्री आयकैम्प

वीरायतन द्वारा संस्थापित श्री आदिनाथ नेत्रालय पालीताणा नेत्र रोगियों के लिए एक आस्था का केन्द्र बन गया है। साधु-सन्तों के लिए भी यह एक राहत का स्थान है क्योंकि यहाँ के चिकित्सक केवल निष्णात ही नहीं अत्यन्त प्रेमपूर्ण भी है।

नेत्रालय का पूरा कर्मचारी वर्ग अत्यन्त विनम्र और आदरपूर्वक व्यवहार से मरीजों का दिल जीत लेता है।

इस नेत्रालय द्वारा पालीताणा के आस-पास के गांवों और कसबों में भी फ्री आयकैम्प का समय-समय पर आयोजन होता है। अभी 12 जून 2023 को गारियाधार (पालीताणा) में फ्री आयकैम्प का आयोजन हुआ। इसमें सहयोग मिला सामेक्स इन्डिया प्राईवेट लिमिटेट के. जे. वाघाणी सामूहिक आरोग्य केन्द्र गारियाधार का। इस कैम्प में 188 मरीजों की आंखों की जांच और इलाज फ्री किया गया और दवा भी मुफ्त दी गई। जिनमें ऑपरेशन योग्य 30 मरीजों के मोतियाबिन्द के ऑपरेशन आदिनाथ नेत्रालय में फ्री कराये जायेंगे।

वीरायतन मेरठ में भंडारा

वीरायतन मेरठ के तत्त्वाधान में पद्मश्री डॉ. आचार्य चन्दनाश्रीजी के आशीर्वाद से 26वें केन्द्र वीरायतन मेरठ के छठे स्थापना दिवस पर एवं शीना के जन्मदिन के शुभ अवसर पर विशाल भंडारे का आयोजन जैन सन्स यूनिफॉर्म बुढाना गेट पर किया गया। जिससे साडे तीन सौ से अधिक लोगों को छोले-चावल के प्रसाद का वितरण किया।

जिसमें बड़े उत्साह के साथ संस्था के चेयरमैन श्री कीमतीलाल जी जैन सचिव श्री अश्विनी जैन कोषाध्यक्ष श्री राजेन्द्र तनेजा एवं श्री विजय गईजी, राजीव जी बिनीवाले, अभिषेक जैन, पुलकित जैन, सजल जैन, शीना जैन, प्रवेश जैन, प्रियंका जैन एवं लवयम जैन ने सहयोग किया।

नवलवीरायतन पुणे में शिविर श्रृंखला
तृतीय सत्र

पद्मश्री डॉ. आचार्य चन्दनाश्रीजी पूज्य ताई मां के सान्निध्य में नवलवीरायतन जैसे रमणीय शिखर स्थान में अप्रैल से लगातार शिविर श्रृंखला चल रही है। अभी उसी श्रृंखला में 13 से 15 मई 2023 तथा 22 से 24 मई 2023 के दो शिविर सम्पन्न हुए हैं।

कुछ लाभार्थी जिन्होंने अपने भाव व्यक्त किये हैं नामों के साथ उनके संक्षिप्त भाव प्रस्तुत है–

मैंने पहली बार यहाँ जाना कि जैन धर्म और अहिंसा केवल अंधश्रद्धा नहीं है किन्तु एक वैज्ञानिक तथ्य है जो जीवन को प्रकाश की दिशा देता है।

–वंशिता सोलंकी

जैन धर्म की वास्तविक समझ मिली। जो पाया अनमोल है। पुनः पुनः शिविर हो और मैं आ सकुं यह भावना है।

–संगीता सतीश दोमावत

शिविर में जो जानने समझने को मिला, कभी भूल नहीं पाऊंगी आप सभी साध्वीजी का वात्सल्यपूर्ण व्यवहार हमारे जीवन का आदर्श रहेगा। जो व्यवस्था थी अत्यन्त सुन्दर अत्यन्त अनुकूल।

–वेबी सुरेश ओसवाल

मैं साध्वी भगवन्तों के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हूँ कि इतनी सहजता से जो दिया अनमोल दिया है। जीवन को सार्थकता प्रदान की है। मैं उसे अमल में लाने का प्रयत्न करुंगा।

–जितेन्द्र, पुणे

परिवर्तन आवश्यक है क्योंकि परिवर्तन ही जीवन है। मूल, अपरिवर्तित रहता है लेकिन फूल-फल और पत्तों का परिवर्तन ही वृक्ष को जीवित रखता है। इस रहस्य को मैं समझ पायी।

–मयूरी ओसवाल

आनन्द की अनुभूति हुई। मैंने समय के साथ रहना सीखा। समय में रहना ही सामायिक साधना है। यह बोध पाया।

–रेखा जैन कराड

नयी रोशनी मिली। जीवन में बहुत कुछ परिवर्तन हुआ है। निराशा गायब हुई। हमेशा खुश रहकर ओरों को खुश रखने का प्रयास करुंगी। घर का प्रत्येक सदस्य शिविर का लाभ ले यही भावना है।

–कला प्रवीण ओसवाल

प्रवचन हृदयग्राही, भोजन सुस्वादु, व्यवस्था अत्यन्त सुन्दर, सबकुछ मधुरातीमधुर। अविस्मरणीय! अद्‌भुत!!

–मधु एम. सोलन्की

केवल अपना ही अपना नहीं किन्तु दूसरों के सुख-दुःख का विचार हम कर सके इसका ज्ञान हमने पाया।

–ममता भरत ओसवाल

बहुत अच्छा लगा। शान्ति मिली। फ्रेश हवाओं के साथ फ्रेश विचार प्राप्त हुए। पूज्य ताई मां की क्रान्तिकारी सोच जो आप साध्वीजी महाराज ने हम तक पहुँचाई हम धन्य-धन्य हुए।

–सविता रनजीत सोलन्की

प्रवचन अति सरल सुबोध और नयी पीढ़ी के लिए ग्राह्य थे शिविर के सारे कार्यक्रम अत्यन्त उपयोगी थे। हम भूल नहीं सकेंगे।

–संगीता ओसवाल

साध्वीश्री यशाजी महाराज साध्वीश्री दिव्याजी एवं साध्वीश्री शाश्वतजी का प्रेमपूर्ण स्वभाव एवं उनकी मधुरवाणी ने प्रभु महावीर की वाणी को सरल सुबोध और ग्राह्य बना दिया। स्वास्थ्य की एवं योगा की शिक्षाएँ भी सुन्दर रीति से बतायी गई।

–नीलेश चम्पालाल दोशी, पुणे

आश्चर्यकारी अनुभव आश्चर्यकारी साध्वी भगवन्तों द्वारा!! सच! हर पल मानो आनन्द की तरंगें मेरे भीतर उछाले मार रही थी। आर्ट ऑफ लिविंग के लेक्चर से मैं जान पायी कि किन चीजों पर ध्यान देना चाहिए और किन चीजों से हमें दूर रहना चाहिए। सच! पूज्य ताई माँ को अनेकशः वन्दन और धन्यवाद कि उनकी दीर्घदृष्टि से हमें यह लाभ प्राप्त हुआ।

–सीमा नीलेश दोशी, पुणे

वन्दन साध्वीजी! आपकी प्रेमपूर्ण मार्गदर्शक वाणी ने मानो पूरा जीवन ही बदल दिया है। जीवन को प्रकाश की दिशा मिली है। आपने जो समय दिया, जो प्रयत्न किया जो प्रेम बांटा अत्यन्त ऋणी है हम सब। धन्य-भावों से भरे हैं।

–नासिक नीलेश दोशी

एक अद्‌भुत आनन्द पाया। विदुषी साध्वी संघ की युगानुकूल वाणी ने मेरे दृष्टिकोण को बदल दिया। अनेकशः वन्दन। धन्यवाद।

–भव्य नीलेश दोशी

अत्यन्त उत्साहपूर्ण स्वर्गिक वातावरण था। अनेक बातें सीखी जो मेरे जीवन को स्वस्थ और आनन्दपूर्ण बनाने में सक्षम है।

–रीनल भण्डारी

नवल वीरायतन बहुत सुन्दर स्थान है। शिविर के मात्र तीन दिनों ने मेरा सम्पूर्ण जीवन परिवर्तित कर दिया। अगले सारे शिविर कार्यक्रमों में आने की अभिलाषा करती हूँ।

–दिया महेन्द्र सोलन्की

शिबिर में मैंने जाना कि जीवन एक उपहार है जो प्रेम के रुप में दोनों हाथों से बांटा जाना चाहिए।

–शोभा ओसवाल

यह शिविर सर्वोत्कृष्ट शिविर थी। शाश्वतजी को बहुत-बहुत धन्यवाद कि उन्होंने मुझे शिविर में आने की प्रेरणा दी और जो मैंने यहाँ आकर पाया, अद्भुत है, अविस्मरणी है।

–हर्ष विनोद जैन

मेरी प्रार्थना है कि ऐसे युवा शिविर आप बार-बार ले।

–चेतना मुकेशजी पारेख

हर चीज अद्भुत थी। जितनी शिविर की विविध शिक्षा अद्भुत थी उतनी ही बाह्य व्यवस्था भी अद्भुत थी।

–राजश्री ललित जैन

अध्यात्म के मार्ग पर आगे बढ़ने की दिशा मिली।

–गायत्री वी. वारे

प्रकृति की गोद में, गुरु के सान्निध्य में समय सार्थक हुआ।

–जवेरचन्द एम. राहोद

'पद्मश्री' आचार्य चन्दनाश्रीजी का विजन डॉ. अभयजी फिरोदिया जी का उदारतापूर्ण अनमोल सहयोग और नवलवीरायतन का स्मरणीय प्रकृति सान्निध्य शिविर में हमलोगों ने खूब आनन्द उठाया और जीवन को सफल बनाने की कला सिखी।

–पक्षाल विनोद जैन

सबकुछ अलग हटकर था, जैसे- 'मुस्कान से मोक्ष' अपने खुद के स्वभाव पर सचेत रहो, ऐसी अनेक अद्भुत बातें जो जीवनोपयोगी है वे सहजता से सीख पाये। नवलवीरायतन की प्राकृतिक शान्ति, स्वादिष्ट भोजन, योगाक्लास स्वास्थ्य सबकुछ बार-बार निमन्त्रण दे रहा है।

–रीतिक किशोर ओसवाल

शिविर में जो पाया अत्यन्त अद्भुत है। शब्द शक्तिहीन है उसे अभिव्यक्त करने में। बस, धन्यवाद। वन्दन और वन्दन।

नवल वीरायतन में शिबिर का
चतुर्थ सत्र

व्यासपीठ पर विजराजमान पद्मश्री डॉ. आचार्य चन्दनाश्रीजी पूज्य ताई मां तथा सभी साध्वीजी के चरणों में वन्दन।

अद्भुत अनुभव है! शिविर के इन तीनों ही दिन का हरपल हमें एक अलौकिक प्रतीति कराता रहा। 40, 42 डिग्री के इस ताप में भी स्वर्गिक अनुभूति रही यहाँ। धन्य है इतनी सुन्दर व्यवस्था प्रदाता डॉ. श्री अभयजी फिरोदिया को और ताई मां आपको मैं कैसे धन्यवाद दूँ कि आप हमारे लिए यहाँ पधारे और प्रभु महावीर की वाणी का पान कराया सच्चे अर्थ का बोध दिया।

ये सह्याद्रि के शिखर, यह भीमा नदी की विशाल जलराशि, यह प्रकृति की

रमणीयता और विशेषत: आपश्री का अनुपम सान्निध्य! अनन्त जन्मों के पुण्य फलित हुए हैं हमारे। आपका अद्वितीय संदेश याद रखेंगे हम कि मन को कूड़ाघर नहीं बनाना है बल्कि मन को मन्दिर बनाना है। उपाध्यायश्री यशाजी, डॉ. सम्प्रज्ञाजी, साध्वी रोहिणीजी सबकी ध्यान, ज्ञानचर्चा स्तुति स्वास्थ्य आदि अनेक आयामों से जीवन उत्थान करती वाणी कभी भुला नहीं पायेंगे। मधुरवाणी, मधुरकण्ठ और मधुर व्यवहार हमारे जीवन को सदैव प्रेरणा देता रहेगा।

मेरे पास शब्द नहीं है। खूब-खूब वन्दना तथा पूरे मेरठ परिवार की त्रिवार वन्दना।

– मेरठ परिवार एवं सौ. आशा दिलीपजी खिंवसरा, चाकण पुणे

त्रिदिवसीय शिबिर वस्तुत: एक स्वर्णिम अवसर रहा। ताई मां के दर्शन साक्षात् सरस्वती, लक्ष्मी और दुर्गा के एकत्रित दर्शन पाये। ताई मां के श्री मुख से जीवन के अनुभव सुनकर हम सभी को एक विश्वास और नव चैतन्य का संचार हुआ। मेंने अपना जीवन नारी सबलीकरण एवं सशक्तिकरण हेतु समर्पित किया है। आप तो नारी शक्ति का साक्षात् जीता जागता अनुपम उदाहरण है। आपका संघर्ष भरा जीवन हमारे लिए प्रेरणास्त्रोत है। पांच दशकों से अनेक आपदाओं को पार कर सेवा के क्षेत्र में आपने जो कार्य किया है और नारी जाति का गौरव देश-विदेश में अंकित किया है वस्तुत: आपने जैन समाज का गौरव बढ़ाया है।

सेवा के माध्यम से आपने महावीर को जन-जन में स्थापित किया है। ताई माँ के शिष्यगण सभी साध्वियों के ज्ञान भण्डार और सरलता तथा मिलनसारिता ने सबको नई दिशा दी। आपने औरों के लिए जीना सिखाया, हंसते-हंसाते जीना सिखाया। आपको विश्व के हर प्राणी के शांति की चिन्ता और (World without War) की दिशा में उठाया कदम आपके चिन्तन की गहराई दर्शाता है। आप विश्व की मां हो। ताई मां आप तो कोहिनूर हो ही आपका शिष्यमण्डल भी एक से एक कीमती हीरे हैं।

–नमन

सौ. रुचिका सुराणा जैन, राष्ट्रीय अध्यक्ष जैन कॉन्फ्रेन्स

स्मृतिपुष्प

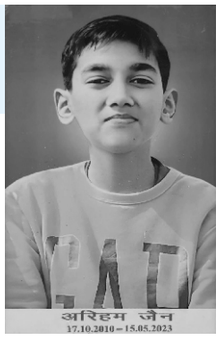

चाहे हिमालय की चट्टान-सा हो मन साधक का, चाहे धीर, वीर, ज्ञानी का मस्तिष्क हो या संसार के विरक्त वैरागी हो जब ऐसी अनहोनी हो जाय तो अंधेरा छा जाता है चारों ओर, शून्यता फैल जाती है अन्दर और बाहर। एक प्रश्न दैत्याकार खड़ा हो जाता है सामने कि जिसका उत्तर कहीं नहीं मिल पाता है।

एक मासूम से बच्चे के साथ ऐसा क्रूर घटनाक्रम कैसे ..... और क्यों घटित होता है?

पटनासिटी के सुप्रतिष्ठित व्यापारी वीरायतन के समर्पित कार्यकर्त्ता श्री राजकुमार जैन के मात्र 13 वर्षीय पौत्र अरिहम् जिसकी डोनबोस्को स्कूल के टीचर और बहुत से क्लासमेट प्रतीक्षा कर रहे थे और इधर अरिहम् डोन्बोस्को जाने के लिए स्कूल रिक्शा में सवार था। पीछे से तेजगति से एक ट्रक आया और रिक्शा को घसीट लिया। जो हाल हुआ बच्चे के शरीर का न देखा जा सकता था न कहा जा सकता है। यह दिन था 11.04.2023।

श्रद्धेय आचार्य श्री ताई मां ने लिखा है–

आत्मप्रिय श्री राजुभाई सौ॰ अर्चना जी तथा प्रिय अंशु एवं श्रेया!

मासूम बेटे अर्हम् के समाचार से मैं स्वयं स्तब्ध रह गयी। आपके आघात को मैं अनुभव कर रही हूँ। दादा-दादी, माता-पिता और साथ-साथ खेलने-खानेवाला प्रिय भाई सबके अन्तर्मन की शून्यता अपूरणीय है।

राजगृह वीरायतन में पार्श्वजिनालय की प्रतिष्ठा के समय, ध्वजारोहण में तथा अनेक प्रसंगो पर परिवार के साथ कई बार दोनों बच्चों को मैंने देखा है और उनके ऊँचे संस्कारों से मेरा मन प्रभावित रहा है। इतना ही कहुँगी परिवार के सदस्यों को कि वे चि॰ अर्हम् को अरहन्त भक्ति में खोजेंगे प्रिय भाई की प्रसन्नता में देखेंगे। उसकी आत्मिक उपस्थिति का अनुभव करेंगे जो आपकी व्यथा कम करेगी। उसकी स्मृति सदैव रहेगी जो आपको सत्कर्म की दिशा में प्रेरित करती रहेगी।

सबके उज्ज्वल भविष्य के लिए आशीर्वाद

–आचार्य चन्दना "ताई माँ"

VEERAYATAN
compassion in action

With the inspiration and blessings of Padmashree Pujya Tai Maa Three 48-Seater School buses donated by SHRI FIRODIA TRUST

Dr. Sadhvi Sampragyaji Maharaj on Behalf of SHRI FIRODIA TRUST handing over three buses to Secretary, Veerayatan Bihar.

Secretary, Veerayatan Bihar handing over the buses to The Principal, Tirthankar Mahaveer Vidya Mandir, Lachhuar.

'Shri Amar Bharti' printed and published at Patna by Navin Chand Suchanti
on behalf of VEERAYATAN, Rajgir. Dist. Nalanda, Rajgir-803116 (Bihar)
Website : www.veerayatan.org